श्री अर्बुदाचल और तत्पार्श्ववर्ती प्रदक्षिणा जैनतीर्थ

—श्री जोधसिंहजी मेहता, B. A., LL.B.

विश्वविख्यात देलवाड़ा जैन मन्दिर :

देलवाड़ा का प्राचीन नाम 'देव कुल पाटक' है। जो अर्बुदाचल आबू पर समुद्र की सतह से लगभग ४००० फीट ऊँचा है। जैन मान्यता के अनुसार, इस पर्वत पर अरब (सौ करोड़) मुनिवरों ने तपाराधना की और भगवान् ऋषभदेव के दर्शन कर कृतकृत्य हुए। दूसरा कथन यह भी मिलता है कि जो यहाँ के मूलनायक भगवान् श्री आदीश्वरजी के सन्मुख जो वस्तु भेंट की जाय, उसका फल आगामी भव में अर्बुद गुणा (दश करोड़ गुना) प्राप्त होता है। यही कारण है कि इस पर्वत का नाम अर्बुदाचल है। यह भी कहा जाता है कि बहुत प्राचीन समय में भरत चक्रवर्ती ने अपने पिता भगवान् ऋषभदेव का चर्तुमुख प्रासाद इसी आबू पर्वत पर निर्माण करवाया था, जो कालान्तर में विध्वंस हो गया और फिर मध्यकालीन युग में वि. सं. १०८८ (सन् १०३१) में गुजरात के राजा भीमदेव प्रथम के मंत्री और सेनापति विमलशाह जब चन्द्रावती नगरी (आज विध्वंस रूप और आबूरोड रेल्वे स्टेशन से ४ मील) के शासक रहे, तब आचार्य श्री धर्मघोषसूरि के सदुपदेश से, इस पुरातन तीर्थ का उद्धार कराया। देलवाड़ा में १८ करोड़ और ५३ लाख रुपये का सद्व्यय करके गुजरात के वडनगर के पास के प्रसिद्ध सूत्रधार कीर्तिश्वर द्वारा अपने नाम से 'विमल वसहि' नाम का मंदिर निर्माण करवाया। इस श्वेत संगमरमर के मंदिर को बनाने में १५०० कारीगरों व १२०० मजदूरों ने महान् परिश्रम किया और संसार में संगतराशी का मनोहर और महान् कारीगरी का अनुपम कौतुक १४ वर्षों में खड़ा किया जिसको 'संगमरमर का सौन्दर्य' कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। ऐसा ही दूसरा मन्दिर इसके पार्श्व में कुछ ऊँचाई पर गुजरात के राजा वीरधवल के दो भ्राता मंत्री वस्तुपाल और तेजपाल ने १२ करोड़ और ५३ लाख रुपये खर्चकर, अपने बड़े भाई लूणसिंह की स्मृति में बनवाकर, उसका नाम लूणिगवसहि रखा। इस रमणीय कारीगरी वाले मन्दिर का सूत्रधार गुजरात का सोमपुरिया शिल्पी शोभनदेव था। इस मन्दिर का निर्माण वि. सं. १२८८ (सन् १२३० ई.) में हुआ था। वि. सं १३६८ (सन् १३११ ई.) में यवन सेना, सम्भवतः अल्लाउद्दीन खिलजी की सेना ने जो जालोर जीत कर, आबूरोड होकर कूच कर रही थी, इन मन्दिरों को कुछ ध्वंस किया जिसके दस वर्ष बाद वि. सं. १३७८ (सन् १३३१ ई.) में उत्तम श्रावक लल्ल और बीजडने विमल वसहि का और व्यापारी चंडसिंह के पुत्र पीथड़ ने लूणिग वसहि का जीर्णोद्धार करवाया और उस समय दोनों मंदिरों में प्रस्थापित मूर्तियों के स्थान पर श्वेत और श्याम पाषाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की मूर्तियां क्रमशः भगवान् ऋषभदेव और भगवान नेमिनाथ की प्रतिष्ठापित की गई जो आज विद्यमान हैं। अन्तिम जीर्णोद्धार सेठ आणंदजी कल्याणजी अखिल भारतीय श्वेताम्बर जैन प्रतिनिधि पेढी (अहमदाबाद) ने वि. सं २००७ से २०१९ तक सोमपुरा के सूत्रधार श्री अमृतलाल मूलशंकर त्रिवेदी द्वारा करवाया था। इन मुख्य मंदिरों के अतिरिक्त तीन जैन मंदिर और हैं जो बाद के बने हुए हैं। इस मंदिर के श्वेत संगमरमर के पाषाण, घंटनाद करते हुए हाथियों की पीठ पर, आबूरोड से करीब १४ मील दूर आरासुर पहाड़ से आये हैं।

विमल वसहि और लूणिगवसहि दोनों जैन मंदिर केवल प्राचीनता के कारण ही प्रसिद्ध नहीं है किन्तु संसार की वास्तु और स्थापत्यकला के उत्कृष्ट और अलौकिक नमूने हैं। ये मन्दिर कलाकृतियों की अपूर्व व आश्चर्यजनक निधि है जिसको निहारते हुए, दर्शक विमुग्ध होकर अपने भान को भूल जाते हैं। कर्नल एर्सकिन (Col. Erskin) ने इन दोनों मंदिरों के विषय में भूरि भूरि प्रशंसा, इन शब्दों में की है "कारीगर की टांकी से, इन सब अपरिमित व्यय से किये गये प्रदर्शनों में, दो मंदिर अर्थात् आदिनाथ और नेमिनाथ के मंदिर सर्वोत्तम और विशेष दर्शनीय और प्रशंसनीय पाये जाते हैं। दोनों पूरे संगमरमर के बने हुए हैं और तमाम बारीकी और अलंकार की प्रचुरता से जो कि भारतीय कला के स्रोत इनको निर्माण के समय प्रदान कर सकते थे, खुदे हुए हैं।"

प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टाड ने, इस मंदिर को भारत का सर्वोत्तम मंदिर और ताज से तुलना करने योग्य बतलाया है। पश्चिम भारत के स्थापत्य कला का सबसे बढ़िया नमूना है और सोलंकी समय का चालुक्य स्टाइल दिखाई देता है।

विमल वसहि :

इस मंदिर के निर्माण के पूर्व, विमलशाह के रास्ते में कुछ बाधाएँ आयीं, जिसको उन्होंने साहस, दृढ़ता और दैविक शक्ति से पार कर अनोखे मंदिर को संपूर्ण करने में सफलता प्राप्त की। यद्यपि विमलमंत्री ने राजा भीमदेव से मंदिर बनाने की आज्ञा प्राप्त कर ली थी, फिर भी उन्होंने १४०' × ९०' वर्ग फीट भूमि का, जिस पर यह मंदिर खड़ा हुआ है, मूल्य इसके सन्निकट कन्याकुमारी के पास प्राचीन विष्णु और शैव देवालयों के जोशियों को, सुवर्ण की चौकोर मुद्रायें बिछा कर चुकाया। वे चाहते तो राजकीय प्रभाव से काम ले सकते थे किन्तु धार्मिक प्रयोजन हेतु, उन्होंने यह उचित नहीं समझा। यही नहीं, जोशियों (ब्राह्मणों) ने उनका आधिपत्य होने से विमलमंत्री को जैन मंदिर बनाने से रोका तो उन्होंने तीन रोज का उपवास कर श्री अंबा माताजी की आराधना की जिससे प्रसन्न होकर देवी ने पास ही भूमि में छिपी हुई २५०० वर्ष पुरानी जिन मूर्ति स्वप्न में बतलाई, जिसके प्रत्यक्ष होने पर, ब्राह्मणों को आबू पर्वत पर जैन धर्म का अस्तित्व होने का पुख्त प्रमाण मिला और फिर मंदिर का कार्य आरम्भ होने लगा। जब मंदिर का कार्य चल रहा था तब क्षेत्रपाल वालीनाथ व्यंतर ने व्याधि पैदा की जिससे दिन भर का काम रात भर में साफ हो जाता था। व्यंतर ने मांस और मदिरा की बलि मांगी परन्तु जैन होने के नाते इन्कार होकर अनाज और मिठाई देना स्वीकार किया। इसको नहीं मानने पर विमलशाह ने द्वन्द्व युद्ध कर, क्षेत्रपाल पर विजय प्राप्त की और निर्माण कार्य आगे चलने लगा। अंबा देवी की सुन्दर मूर्ति २५०० वर्ष की प्राचीन जैन प्रतिमा और वालिनाथ की मूर्ति, विमल वसहि के दक्षिण पश्चिम कोने की ओर, आज भी विद्यमान है। इस मंदिर के, मुख्य भाग— मूल गंभारा, गूढ मण्डप, नौ चौकी, रंग मण्डप, बावन जिनालय है। मूल गंभारा में श्वेत संगमरमर की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशालकाय भगवान् श्री आदीश्वर जी (श्री ऋषभदेवजी) की मूर्ति मूलनायक तरीके स्थापित है जिसके बाहर गूढ़ मंडप उपासना हेतु निर्मित है। गूढ मण्डप यद्यपि सादे संगमरमर का बना हुआ है किन्तु इसके तीन द्वारों की बाहर की कारीगरी बहुत महान और प्रचुर है। गूढ मण्डप के पूर्वीय द्वार पर नौ चौकी है जिसकी छत, नौ भागों में विभक्त है। प्रत्येक छत पर भांति-भांति के कमल, पुष्पों, पुतलियों आदि की आकृतियाँ अतिसुन्दर और मनमोहक हैं। नौ चौकी से नीचे उतरने पर, इस मंदिर की सबसे सुन्दर रचना रंग मण्डप है जो १२ कलामय स्तभों पर आश्रित है। रंग मंडप के तोरण और मध्यवर्ती घुमट की नक्काशी बहुत ही महान और चित्ताकर्षक है। घुंमट, ग्यारह नाना प्रकार के हाथी, घुड़सवार घोड़े, बतख आदि हार मालाओं से आवृत है जो समानान्तर पर लगाई हुई षोडश १६ विद्यादेवियां अपने-अपने अलग-अलग चिन्हों से सुशोभित हैं। विद्यादेवियों के नीचे स्तभों के ऊपरी भाग पर आश्रित, कमनीय कमर झुकती हुई तथा विविध वाजित्रों को भक्ति-भाव के साथ बजाती हुई पुतलियां दृष्टिगोचर होती हैं। घुंमट के केन्द्र बिन्दु पर, बड़ा मनमोहक झुमक लटकता हुआ दिखाई देता है जो सारा का सारा सर्वोत्कृष्ट खुदाई के काम से खचित है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे इसे मोम से ढाल कर ही बनाया गया हो। इसके पूर्व की तरफ, तीन छोटे छोटे गुम्बज हैं जिनमें कारीगरी का अनुपम सौंदर्य टपकता है। रंग मंडप, नौचोकी, गूढ मण्डप और मूल गंभारा का संयुक्त आकार क्रिश्चियन क्रॉस जैसा दिखाई देता है। जिसके चारों ओर इसके ऊपरी भाग में बावन जिनालय देव कुलिकाओं के आ गये हैं। अन्तिम जीर्णोद्धार में इन छोटी देवरियों की संख्या ५४ से ५६ हो गयी है। प्रत्येक देवरी के द्वार और द्वार के सामने की छतें, भिन्न-भिन्न प्रकार के कमल कलियों, कमल पुष्पों और कमल पत्तियों की आकृतियों एवं सिंहों, अश्वों, हीरों, मनुष्यों और घुड़सवारों आदि की मालाओं से अलंकृत हैं। छतों और दीवारों पर, कहीं कहीं हिन्दू और जैन धर्म के शास्त्रों में वर्णित आख्यान—भरत बाहुबली का द्वन्द्व युद्ध, तीर्थंकरों के जन्म कल्याणक, समबसरण, गुरूपासना, कालिया नाग-दमन, लक्ष्मी, शीतलादेवी, सरस्वती, पाताल-कन्या, हिरण्य कश्यप वध, नरसिंह अवतार आदि अनेक कलाकृतियाँ खुदी हुई दिखाई देती हैं। दक्षिण पश्चिम कोने में, दो द्वार वाली देवरी में २५०० वर्ष प्राचीन भगवान् ऋषभदेव की श्याम वर्ण वाली विशाल मूर्ति के सामने सम्राट अकबर के प्रतिबोधक जगद्गुरु महान जैनाचार्य श्री हीरविजयसूरिजी की सं. १६६१ की श्वेत और सुन्दर मूर्ति है। इसके अतिरिक्त, इस मन्दिर में स्थान स्थान पर शिलालेख मिलते हैं जिसकी संख्या २५९ है। इन शिलालेखों की प्रतिलिपियाँ, स्व. मुनिराज श्री जयंतविजयजी लिखित "श्री अर्बुद जैन लेख संदोह' (आबू दूसरा भाग) में मिलती है। सबसे प्राचीन शिलालेख वि. सं. १११९ का है। विविध स्थापत्य के नमूनों और शिलालेखों का अध्ययन करने से तत्कालीन सूत्रधारों का शास्त्र निहित परिज्ञान और परिश्रम एवं सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक जीवन का परिचय प्राप्त होता है। विमल वसहि के मुख्य द्वार के सन्मुख, विमल शाह की हस्तिशाला है जिसमें दस संगमरमर के सफेद बड़े हाथी और विमलमंत्री की अश्वारोही मूर्ति है।

लूण वसहि

एक ऐसा ही दूसरा अनुपम मंदिर है जो विमल वसहि के पास कुछ अधिक ऊंचाई पर स्थित है। इसकी वि. सं. १२८७ फाल्गुन वदि ३ रविवार को नागेन्द्रगच्छके आचार्य श्री विजयसेन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरिजी ने बाइसवें तीर्थंकर भगवान श्री नेमिनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी। इस अवसर पर ४ महाधर, १२ मांडालिक ८४ राणा और ८४ जातियों के महाजन और अन्य लोग एकत्रित हुए थे। इस मंदिर की परिक्रमा नौ चौकी, रंगमण्डप और हस्ति-शाला की कारीगरी की शैली विमल वसहि की शैली से भिन्न और बहुत बारीक मानी जाता है। इसमें द्वारका नगरी, कृष्णलीला, देरानी जेठानी के गोखले (झरोखे), रंगमंडप के स्तंभ तोरण और केन्द्र के नन्हे नन्हे पुष्पोंसे आच्छादित झूमक, एवं रंगमंडपके दक्षिण-पश्चिम कोने के पास की छत पर, कमलकी पंखुडियों पर नर्तिकाओं का सुन्दर पट्ट दर्शनीय है। अन्तिम पट्ट भारतीय नाट्यकला का एक अद्वितीय नमूना है जिसमें प्रत्येक नर्तकी का भिन्न-भिन्न हाव-भाव और अंग मरोड, संगमरमर के पाषाण पर परिलक्षित होता है। छतों पर कमल के पुष्पों, विविध आकार के हाथी, घोड़े सिंह, स्त्री पुरुष, देवी देवताआदि की कलाकृतियाँ, भावभीने और मनमोहक ढंग से प्रदर्शित की गई हैं और वे स्थिर नहीं दिखाई देकर, सक्रिय प्रतीत होती हैं। इसके अतिरिक्त, राज दरबार, राजकीय सवारी, वरघोड़ा, बरात, विवाहोत्सव आदि के कई प्रसंग, हूबहू अंकित किये गये हैं। नाटक, संगीत, युद्ध संग्राम, पशु पक्षी, संघ यात्रा, ग्वालोंका जीवन आदि दृश्यों में तत्कालीन राजकीय, सामाजिक, व्यापारिक और व्यावहारिक जीवन की प्रत्यक्ष झांकी नजर आती है। जैन और वैष्णव दोनों ही धर्मों की महत्वपूर्ण घटनाओं को शिल्पकार ने सजीव रूप दिया है। देरानी जेठानी के गोखलों में, जिसको नौ लखिये गोखले भी कहते हैं, गहन और बारीक टांकी से खोदकर निकाले गये पत्थर के चूरे के बराबर स्वर्ण तोल कर दिया गया। जनश्रुति के आधार पर वस्तुपाल और तेजपालकी धर्मपत्नियों के निर्माण करवाये हुए, ये गवाक्ष हैं किन्तु ऐतिहासिक प्रमाण से तेजपाल की दूसरी स्त्री सुहंदा देवी की स्मृति में ये बनाये गये हैं।

विचित्र शैली का यह मंदिर, विमल वसहि के निर्माण काल से २०० वर्ष पश्चात्, मंत्री तेजपाल की धर्मात्मा पत्नी अनुपमा देवी की प्रेरणा से बना था। शोभनदेव सूत्रधार ने सात वर्ष में इस मंदिर का निर्माण किया था। इस मंदिर की पश्चिम दिशा में बड़ी हस्ति-शाला है जिसमें आभूषणों एवं रस्सियों से सुजज्जित १० हाथी श्वेत संगमरमर के दर्शनीय हैं।

अन्य मंदिर

उपरोक्त विश्वविख्यात दो मंदिरों के अतिरिक्त, पीतलहर भगवान् ऋषभदेवका मंदिर, भगवान् महावीर स्वामी का मंदिर, और कारीगरों का मंदिर (खरतर वसहि) हैं। पीतलहर मंदिर में भगवान् ऋषभदेव की १०८ मन वजन की मूर्ति है। कुछ शिलालेखों के आधार पर, इसका निर्माणकाल वि. स. १३७३ और वि. सं. १४८७ के बीच माना जाता है। इसका निर्माता, गुजरात का भीमाशाह गुर्जर था और वि. स. १५२५ में वर्तमान मूर्ति की प्रतिष्ठा अहमदाबाद के सुल्तान महमूद वेगडा के मंत्री सुन्दर और गदा ने बड़े धामधूम से कराई थी। इस मंदिर के अन्तर्गत, नववें तीर्थंकर भगवान् श्री सुविधिनाथ का बड़ा देवरा है जिसमें चारों ओर छोटी बड़ी मूर्तियाँ स्थापित हैं उसमें पुंडरिक स्वामी की भी एक मूर्ति बहुत मनमोहक है।

पीतलहर के पास ही २००-३०० वर्ष पुराना २४ वें तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी का छोटा मंदिर है जिसके बाहर, गहरे लाल रंग के विचित्र पुष्प, कबूतर, राज दरबार, हाथी घोड़े, नर्तक नर्तिकाओं के दृश्य विचित्र हैं जिसको वि. सं. १८२१ में सिरोही के कारीगरों ने चित्रित किये हैं। इसका निर्माणकाल सं. १६३९ और १८२१ के बीच में होना कहा जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारीगरों का मंदिर

इन चार पांच मन्दिरों के सन्निकट, एक उन्नत, विशाल और तीन मंजिला, चतुर्मुख भगवान् श्री चिन्तामणी पार्श्वनाथ का मंदिर है जिसको **'कारीगरों का मन्दिर'** कहते हैं। जनश्रुति यह है कि कारीगरों ने, दो प्रसिद्ध मंदिरों के भग्नावशेषों से, बिना परिश्रम लिये इसे बनाया था। किन्तु कुछ चिह्नों से यह मंदिर किसी खरतरगच्छ के श्रावक का बनाया हुआ मालुम होता है। इसको **खरतर वसहि** भी कहते हैं। मन्दिर के विशाल मण्डप हैं और मन्दिर के नीचे के बाहरी भाग में, चारों तरफ विद्यादेवियों, यक्षणियों और शाल-भंजिकाओं तथा युगल देव-देवियों की मूर्तियां बड़े हाव-भाव प्रदर्शित करती हुई अंकित हैं। सबसे ऊंची तीसरी मंजिल से पार्श्ववर्ती पर्वतमालाओं, हरी भरी घाटियों के दृश्य सुन्दर और सुहावने दिखाई देते हैं। इस मन्दिर का निर्माणकाल वि. सं. १४८७ के पश्चात् और वि. सं. १५१५ के पूर्व समझा जाता है।

लूणिग वसहि और पीतलहर मन्दिर के बाच के चौक में राणा कुम्भा द्वारा वि. सं. १५०६ में निर्मित कीर्तिस्तंभ और पुष्प क्यारियों से घिरी हुई सघन वृक्षों की छाया में खरतरगच्छ के प्रसिद्ध आचार्य दादा साहब श्री जिनदत्तसूरिजी की छत्री है।

देलवाड़ा आबू के जैन मन्दिरों का दिग्दर्शन करने के पश्चात् यात्री, पर्वत के नीचे के मैदानों के अस्त-व्यस्त जीवन की नीरसता को भूल कर, एकाकीपन में शान्ति अनुभव करता है। विमल वसहि और लूणिग वसहि की, संगमरमर के पाषाण पर अंकित, प्रचुर, सुन्दर ऐश्वर्ययुक्त और अनुपम कलाकृतियों को निहार कर स्वर्गिक आनन्द का आभास करने लगता है। यों देखा जाय तो पत्थर [पाषाण] मनुष्य को समुद्र में डुबा देते हैं, किन्तु इन मन्दिरों के पत्थर, जिन पर दैविक और आधिदैविक कलामय आकृतियां खुदी हुई हैं, मनुष्य को भवोदधि से उभार तरा देता है। इस प्रख्यात मंदिर की व्यवस्था, राजस्थान की पुरानी और प्रसिद्ध सेठ कल्याण जी परमानन्द जी पेढी सिरोही ट्रस्ट कुशलता पूर्वक कर रही है। इस पुरातन और कलाकृत विश्वविख्यात मंदिर के बाह्य और पार्श्ववर्ती भाग के विकास के लिये ट्रस्ट और राजस्थान सरकार ने मिल कर संयुक्त पुनर्विकास योजना सन् २७-५-६९ को बनाई है जिसको कार्यान्वित करने के प्रयास चल रहे हैं।

अचलगढ़ के मन्दिर :

देलवाड़ा से ४ मील दूर, आबू पर्वत पर, ४६०० फीट ऊँचाई पर, एक दूसरा प्राचीन अचलगढ़ है जहां पर तीन जैन मन्दिर हैं। इनमें से श्री आदिनाथ भगवान् के दोमंजिला चौमुखा मंदिर में बिराजमान चौदह मूर्तियों का वजन १४४४ मन के करीब गिना जाता है। इन मूर्तियों की प्रतिष्ठा वि. सं. ११३४, १५१८, १५२६, १५६६ और १६६८ में हुई है। चतुर्मुख मंदिर सबसे उन्नत शिखर पर है और इसके नीचे के स्थान पर भगवान् श्री ऋषभदेव का सं. १७२१ का एक अन्य मंदिर है जिसके पार्श्व में २४ देवरियां है। यहाँ पर सरस्वतीदेवी की भी एक मूर्ति थी जो चतुर्मुख मंदिर के बाहर स्थापित की गई है। इससे विदित होता है कि प्राचीन काल में अचलगढ़ दुर्ग पर सरस्वती देवी की पूजा हुआ करती थी। दूसरा मंदिर गढ़ के दरवाजे के पास अचलगढ़ पेढी के पुराने कार्यालय में भगवान् श्री कुन्थुनाथ का वि. सं १५२९ का मंदिर है जहाँ पर मूलनायक भगवान् की काँसेकी मूर्ति है और कई पंचधातु की प्रतिमाएं हैं। पुराने कार्यालय के दालान में योगीराज स्वर्गस्थ श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शान्तिसूरिजी का चित्र रखा हुआ है जहाँ इनका सन् १९४२ ई. में स्वर्गवास हुआ था। अचलगढ़ के नीचे, तलहटी में, तीसरा मंदिर भगवान् श्री शान्तिनाथका, विशाल और कलामय है जिसको गुजरात के जैन राजा कुमारपाल ने निर्माण कराया था। इस मंदिर को 'कुमार विहार' भी कहा जाता है। यहाँ की शिल्पकला सुन्दर और आकर्षक है।

चन्द्रावती, मुंगथला और जीरावला तीर्थ :

आबूरोड से ४ मील, दक्षिण में विध्वंस तीर्थ चन्द्रावती है जहाँ कि इस मन्दिर के खण्डहर ही विद्यमान हैं। ईसा के पूर्व चौथी शताब्दी से सन् १६८६ ई. तक का इतिहास जैन साहित्य में उपलब्ध है। प्राचीन जैन मन्दिरों के भग्नावशेषों में, कलामय शिखर, गुम्बज, स्तम्भ, तोरण, मण्डपादि ही पाये गये थे जिसमें से भारतीय कला के श्रेष्ठ नमूनारूप एक ही पत्थर में दोनों तरफ श्री शंखेश्वर देव की अद्भुत अंलकारों से सुशोभित मूर्ति है।[1] आबूरोड से ४ मील पश्चिम में, मुंगथला (मुंड स्थल) तीर्थ है जहाँ पर छद्मावस्था में, अपनी ३७ वर्ष की आयु में अर्बुद भूमि की ओर श्री महावीर भगवान् के विहार करने का शिलालेख मिला है और उसी वर्ष में यहाँ मन्दिर राजा पूर्णराज ने भगवान् महावीर का बिम्ब निर्माण करा कर श्री केशीमुनि से प्रतिष्ठा कराई थी।[2] आबूरोड से लगभग २८ मील की दूरी पर विख्यात **जीरावला तीर्थ** है जहाँ पर ग्राम कोडिनार की गुफा से निकली हुई सन् २०० ईसा पूर्व (वि. सं १४३) वर्ष की प्राचीन मूर्ति भगवान् पार्श्वनार्थ की है जो सेठ अनरासा को मिली थी और जिन्होने ही मिलने के ४ वर्ष बाद जीरावला ग्राम में स्थापित कराई थी। इस मन्दिर का वि.सं. २९३, ५६३, ९५१, में जीर्णोद्धार हुए तथा कुछ जैनाचार्यों और जैन श्रावकों ने सन् ५०६ ई. से १३२४ ई. के बीच में यहाँ पर अद्भुत चमत्कार देखे। वर्तमान में मूलनायक तरीके पर, भगवान् श्री नेमिनाथजी की मूर्ति है। इस तीर्थ का प्राचीन नाम (जीरा पल्ली) जीरिका पल्ली मिलता है। चारों ओर पर्वतमालाओं से आवेष्ठित है। वि. सं. १३५४ से १८५१ के लेख हैं। उनमें से सं. १४८३ के शिलालेख में अंचलगच्छ के प्रसिद्ध मेरूतुंगसूरि की पट्टधरण गच्छाधीश्वर श्री जयकीर्तिसूरि का वर्णन है। दूसरा इसी सं. का तपागच्छ नायक श्री देवेन्द्रसूरि पट्टे श्री सोमसुन्दरसूरिजी, मुनि सुन्दरसूरि, श्री जयचन्दसूरिजी, श्री भुवनसुन्दर सूरि का उल्लेख है।

पिंडवाड़ा, नाणा, दियाणा, नार्दिया व बामणवाड़ाजी :

आबूरोड से २८ मील दूर, और सिरोहीरोड रेल्वे स्टेशन से लगभग १½ मील पर, पिंडवाड़ा आता है, पिंडवाड़ा 'जैन पुरी' कहलाती है। और यहाँ पर श्री महावीर भगवान् के बावन जिनालय वाले मन्दिर में, धातु के दो बड़े काउसग्गिये (ध्यान में खड़ी जिन मूर्तियाँ) अति अद्भुत और अनुपम हैं। वस्त्र की रचना तो कमाल की है और एक पर वि. सं. ७४४ का प्राचीन खरोष्टि लिपि का लेख है। गुप्तकालीन कला के सुन्दर नमूने जो कि वसन्तगढ़ के प्राचीन किले से लाये हुए हैं, इस जैन मन्दिर में मिलते हैं। नाणा, दीयाणा, नार्दिया, वामणवाडाजी और अजारी मारवाड़ की छोटी पंचतीर्थों में आती है। इस प्रदेश में कहावत प्रसिद्ध है कि "नाणा,

१. मुनि ज्ञानसुन्दरजी : भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास (पृ. १०२७ से १०२९)

२. पूर्व छद्मस्थकाले बुंद भुवि यमिनः कुर्वतः सद्विहारं सप्त त्रिंशोच वर्षे वहति भगवति जन्मतः कारितार्हच्च श्री देवार्यस्य यस्यो ल्लसदुयलमयी पूर्ण-राजेन राज्ञा श्री केशी सुप्रतिष्ठि, स जयति हि जिनस्तीर्थ मुंस्थलस्य। १४२६
स्व जयन्तविजयजी ···अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह। लेखांक ४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीयाणा ने नादिया, जीवित स्वामी वांदिया" अर्थात् इन तीनों तीर्थों में भगवान् महावीर की जीवितकाल की मूर्तियां हैं। नाणा, पिंडवाडा से १२ मील पर और नाणा रेल्वे स्टेशन से १½ मील पर है। यहाँ के बावन जिनालय के मंदिर में बादामी रंग की वीर प्रभु की सुन्दर प्रतिमा है। दीयाणा सरूपगंज स्टेशन से करीब १० मील दूर है और यहाँ पर भी प्राचीन, हृदयंगम और मनोहर, श्री महावीर स्वामीकी मूर्ति है जिसके परिकर की गादी पर वि. सं. ९९९ का खरोष्टी लिपि का लेख है और नादियां (प्राचीन नाम नन्दिपुर) में जो कि सिरोहीरोड रेल्वे स्टेशन से १½ और बामणवाडाजी से ४ मील पर है, बावन जिनालययुक्त प्राचीन वीर चैत्य है जिसमें भगवान् महावीर की अद्‌भुत विशालकाय और मनोहर मूर्ति को उनके बडे भाई नंदीवर्धन ने भराई थी। इस मूर्ति के आसन पर भी खरोष्टी में लेख है। मन्दिर के बाहर, ऊंची टेकरी पर एक देवरी है जिसमें चंडकोशिया नाग को, वीर प्रभु को डंक मारते हुए प्रदर्शित किया गया है।

लोटाणा तीर्थ :

नांदिया से ४ मील दक्षिण की तरफ, लोटाणा गाँव से आधे मील पर, पहाड़ की तलहटी में एक सुन्दर प्राचीन तीर्थ है जहाँ पर मूलनायक, श्री ऋषभदेव भगवान् की भव्य अद्‌भुत मूर्ति दर्शनीय है। यह मूर्ति प्राचीन और परम सात्विक, लगभग ढाई या तीन हाथ बड़ी है। बाहर रंगमण्डप में प्राचीन काउसग्गिये भगवान् पार्श्वनाथ जी के हैं जिनमें धोती की रेखाओं का शिल्प अद्‌भुत है। दाहिनी ओर के काउसग्गिये पर संवत् ११३७ का लेख है और निवृत्ति कुल के श्रीमद् आम्रदेवाचार्य का उल्लेख आता है। बांई ओर श्री वीर प्रभु की सुंदर परिकर सहित मूर्ति है जिसके काउसग्गिये में संवत् ११४४ का लेख खुदा हुआ है। जिसमें अंकित है कि लोटाणा के चैत्य में प्राग्वाटवंशीय श्रेष्ठि आहीण ने श्रेष्ठि डीव आमदेव ने श्री वर्द्धमान स्वामी की प्रतिमा कराई थी। **बामणवाडा जी** सिरोहीरोड रेल्वे स्टेशन से ५ मील पर है। यह प्राचीन स्थापना तीर्थ कहा जाता है। यहाँ पर लगभग २२०० वर्ष प्राचीन राजा संप्रति के समय का, बावन जिनालय सहित अति रमणिक मन्दिर है। इसके बारे में ऐसी मान्यता है कि छद्‌मावस्था में वीर भगवान् जब यहाँ विचरे थे तब घोर उपसर्ग होकर, भगवान् के कानों में कीले ठोके गये थे, वे उस स्थान पर निकाले गये थे और इस जगह, प्रभु की चरणपादुका, एक छोटी देवरी में स्थापित की गई है। मन्दिर के बाहरी भाग में, श्री महावीर प्रभु के पूर्व के २७ भव, रंगे हुए संगमरमर के पट्टों पर बड़े रोचक दिखाई देते हैं। पास की पहाड़ी पर सम्मेतशिखर की रचना निर्माण हो रहा है।

अजारी :

पिंडवाड़ा से तीन मील के अन्तर पर है जहाँ पर भी भगवान् महावीर का बावन जिनालय वाला मंदिर है। कलिकालसर्वज्ञ प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजी ने, सरस्वती देवी की आराधना की थी जिससे यह तीर्थ 'सरस्वती तीर्थ' भी कहलाता है। यहाँ से करीब ४ मील पर बसन्तगढ़ के प्राचीन जैन मन्दिरों के खंडहर दृष्टिगोचर होते हैं। उपरोक्त छोटी पंचतीर्थों के वर्णन से स्पष्ट है कि इनका भगवान् महावीर के जीवितकाल से बहुत सम्बन्ध है। किन्तु ऐतिहासिक अनुसंधान करने की परम आवश्यकता है।

सिरोही और मीरपुर :

सिरोही, बामणवाडाजी से करीब ८ मील पर है। यहां पर १८ जैन मंदिर हैं जिसमें से १५ मंदिर एक ही मोहल्ले में होने से 'देहराशेरी' कहलाती है। इसमें से तीन मंजिला चौमुखाजी का मंदिर प्रसिद्ध है, इसकी प्रतिष्ठा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि. सं. १६३४ में पोरवाड ज्ञातीय संघवी के वंशज श्रेष्ठि मेहाजाल ने, आचार्य श्री विजयसेनसूरिजी द्वारा कराई थी।[1] **मीरपुर** सिरोही से अणादरा जाते हुए, मोटर बस मार्ग पर मेडा आता है, जहाँ से मीरपुर तीर्थ ४ मील दूर है। यह एक प्राचीन तीर्थस्थान है जहाँ पहाड़ के नीचे सुन्दर चार मंदिर हैं। देलवाडा आबू के सदृश, इन मंदिरों का स्थापत्य माना जाता है।[2] इसका दूसरा नाम हमीरगढ है।

आरासण (कुम्भारीयाजी) तीर्थ :

आबू प्रदक्षिणा का आरासण (कुम्भारीयाजी) तीर्थ, आबूरोड से करीब १६ मील है और गुजरात राज्य के अन्तर्गत आता है। इसका अति प्राचीन नाम 'कुन्ती नगरी' था। कहा जाता है कि वि. सं. ३७० से ४०० के बीच में कभी यहां ३०० मन्दिर थे। इस समय पांच मन्दिर ११वीं सदी के निर्मित हैं। सबसे प्राचीन लेख यहां पर वि. सं. १११० का है। १. सबसे वड़ा ऊंचा और विस्तृत मन्दिर भगवान् श्री नेमिनाथजी का है जिसके बाह्य भाग में देव देवियों, यक्ष यक्षणियों की बड़ी सुन्दर आकृतियाँ खुदी हुई हैं तथा मन्दिर के भीतर, शृंगार चौकी, रंग मण्डप और सभामण्डप है और गर्भागार में मूलनायक भगवान् श्री नेमिनाथजी की सुन्दर चित्ताकर्षक मूर्ति विराजमान है। वि. सं. १२१४ से १५७५ के लेख मिलते हैं किन्तु यह मन्दिर आरासण के मंत्री पासिल का वि. सं. ११७४ के करीब निर्माण कराया जाना पाया जाता है। २. दूसरा कला और कारीगरी का मन्दिर भगवान् श्री महावीर स्वामी का है। इस मन्दिर की कलाकृतियां भव्य और अद्‌भुत हैं जिनकी समानता देलवाड़ा आबू के जिनमन्दिरों से की जा सकती है। स्तम्भों पर सुन्दर नृत्य मुद्राओं में देव देवियों की मूर्तियाँ अंकित हैं और गंभारा में विचित्र बारीक खुदाई की हुई है। ३. श्री पार्श्वनाथजी का मन्दिर भी बहुत आलीशान है। सभामण्डप में दो बड़े काउस्सग्गिये हैं जिन पर वि. सं. ११०६ के लेख हैं तथा चार स्तम्भों और तोरणों की कलाकृतियाँ अति मनोहर हैं। वि. सं. १६७५ में इसकी प्रतिष्ठा हुई तब द्वारों और घुमटों को कलायुक्त बनाया गया था। ४. श्री शान्तिनाथजी के मन्दिर का स्थापत्य, स्तम्भों की रचना, तोरण और छत भी महावीर स्वामी के मन्दिर के सदृश है। प्राचीन लेख वि. सं. १११० और ११३८ के हैं जिससे पाया जाता है कि यह मन्दिर कुम्भारियाजी के मन्दिर में सबसे प्रथम निर्माण हुआ है। ५. श्री सम्भवनाथजी का मन्दिर, अन्य मन्दिरों से कुछ दूरी पर है। कोई लेख इसके निर्माण के विषय में नहीं मिलता। किसी धनी पुरुष का बनाया हुआ करीब १००० वर्ष प्राचीन मन्दिर है जबकि आरासण और चन्द्रावती नगरी की जाहो-जलाली थी। कुम्भारियाजी के मन्दिर, गुजरात के मंत्री विमलशाह ने निर्माण कराये हैं। इन मन्दिरों को अलाउद्दीन खिलजी ने विध्वंस किये थे और वि. सं. १६७५ में जीर्णोद्धार हुआ है।

अर्बुदाचल प्रदक्षिणा से ७२ गांवों के जिनमें प्रसिद्ध व प्राचीन जैन तीर्थों का उपरोक्त वर्णन किया है जिन-मन्दिर हैं। कुल ७१ जिनमन्दिरों के लेखों का संपादन और अनुवाद इतिहास-प्रेमी स्व. मुनिराज श्री जयन्तविजयजी की पुस्तक—अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, आबू भाग-५ में मिलता है। इनमें वि. सं. ७४४ के प्राचीन लेख को छोड़कर, कुल लेख वि. सं. १०१७ से १९७७ तक के बीच के हैं। यह पुस्तक वि. सं. २००५ वीर संवत् २४७५ में श्री यशोविजयजी जैन ग्रन्थमाला भावनगर से प्रकाशित हुई है। □□

१. 'महापुरुष मेहाजाल नाम, तीर्थ थाप्युं अविचल धाम' [पं. शीलविजयजी रचित तीर्थमाला]

२. 'जैन तीर्थोनो इतिहास' पृ. ३३० [लेखक : त्रिपुटी महाराज]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org